Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

[मगनमल पाटनी ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प]

बालबोध पाठमाला भाग ३

(श्री वीतराग–विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित)

लेखक व सम्पादक :

डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम॰ ए॰, पीएच॰ डी॰

संयुक्तमंत्री, पं॰ टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

प्रकाशक :

मगनमल सौभागमल पाटनी फैमिली चैरिटेबल ट्रस्ट, बम्बई

एवं

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए–४, बापूनगर, जयपुर – ३०२ ००४ (राज.)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been donated to mark the 15th svargvaas anniversary (28 September 2004) of, Laxmiben Premchand Shah, by her daughter, Jyoti Ramnik Gudka, Leicester, UK who has paid for it to be "electronised" and made available on the Internet.

Our request to you:

1) We have taken great care to ensure this electronic version of BalbodhPathmala – Part 3 is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

<table>
<tr><th>Version Number</th><th>Date</th><th>Changes</th></tr>
<tr><td>001</td><td>22 Sept 2004</td><td>First electronic version. Error corrections made:
<table>
<tr><th>Errors in Original Physical Version</th><th>Electronic Version Corrections</th></tr>
<tr><td>Page No. 5, Line No.9- ग्रमत</td><td>ग्रमृत</td></tr>
<tr><td>Page No. 9, Line No.18- वाह्य</td><td>बाह्य</td></tr>
<tr><td>Page No. 12, Line No. 8- वहिरंग</td><td>बहिरंग</td></tr>
<tr><td>Page No. 22, Line No.16- ाम</td><td>उपयोग</td></tr>
<tr><td>Page No. 30, Line No.6- तदनन्तर</td><td>तदन्तर</td></tr>
</table>
</td></tr>
</table>

हिन्दी :

प्रथम सोलह संस्करण : १ लाख १७ हजार १००
(३१ मार्च, १९६९ से २६ जनवरी १९९४)

सत्रहवां संस्करण : १० हजार
(३० अप्रेल १९९५)

योग : २ लाख २७ हजार १००

गुजराती :
प्रथम तीन संस्करण : १३ हजार
मराठी :
प्रथम चार संस्करण : २० हजार २००
अंग्रेजी :
प्रथम संस्करण : ५ हजार
कन्नड़ :
प्रथम दो संस्करण : ४ हजार
तमिल :
प्रथम संस्करण : १ हजार ५००
बंगला :
प्रथम संस्करण : १ हजार

महायोग : १ लाख ७१ हजार ८००

मुद्रक :
जे. के. ऑफसैट प्रिंटर्स,
जामा मस्जिद,
दिल्ली.

संकल्प -

‘ भगवान बनेंगे ’

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे।
सप्त भयों से नहीं डरेंगे।।

सप्त तत्त्व का ज्ञान करेंगे ।
जीव–अजीव पहिचान करेंगे।।

स्व–पर भेदविज्ञान करेंगे।
निजानन्द का पान करेंगे।।

पंच प्रभु का ध्यान धरेंगे ।
गुरूजन का सम्मान करेंगे।।

जिनवाणी का श्रवण करेंगे।
पठन करेंगे, मनन करेंगे।।

रात्रि भोजन नहीं करेंगे।
बिना छना जल काम न लेंगे।।

निज स्वभाव को प्राप्त करेंगे।
मोह भाव का नाश करेंगे।।

रागद्वेष का त्याग करेंगे।
और अधिक क्या? बोलो बालक!

भक्त नहीं, भगवान बनेंगे ।।

विषय-सूची

क्रम	नाम पाठ	पृष्ठ
१.	देव–दर्शन	४
२.	पंच परमेष्ठी	८
३.	श्रावक के अष्ट मूलगुण	१३
४.	इन्द्रियाँ	१६
५.	सदाचार	२०
६.	द्रव्य गुण पर्याय	२३
७.	भगवान नेमिनाथ	२८
८.	जिनवाणी स्तुति	३१

पाठ पहला

देव-दर्शन

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने।।

पाये अनंते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर।।

भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि–सुधा नहिं पान कर।। १।।

तब पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी ।।

रूचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा ।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रँगा ।।

प्रिय वचनकी हो टेव, गुणिगण गान में ही चित्त पगै ।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगैं।। २।।

देव-दर्शन का सारांश

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो! आज मैंने महान् पुण्योदय से आपके दर्शन प्राप्त किये हैं। आज तक आपको जाने बिना और अपने गुणों को पहिचाने बिना अनंत दु:ख पाये हैं।

मैंने इस संसार को अपना जानकर और सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहे गये, आत्मा का हित करने वाले वीतराग धर्म को पहिचाने बिना अनंत दु:ख प्राप्त किए हैं। आज तक मैंने संसार बढ़ाने वाले और सच्चे सुख का नाश करने वाले पंचेंद्रिय के विषयों में सुख मान कर, सुख के खजाने स्वपर–भेदविज्ञान रूप अमृत का पान नहीं किया है ।।१।।

पर आज आपके चरण मेरे हृदय में बसे हैं, उन्हें देखकर कुबुद्धि और मोह भाग गये हैं। आत्मज्ञान की कला हृदय में जागृत हो गई है और मेरी रुचि आत्महित में लग गई है। सत्समागम में मेरा मन लगने लगा है। अत: मेरे मन में यह भावना जागृत हो गई है कि आपकी भक्ति ही में रमा रहूँ।

हे भगवन्! यदि बचन बोलूँ तो आत्महित करने वाले प्रिय बचन ही बोलूँ। मेरा चित्त गुणीजनों के गान में ही रहे अथवा आत्महित के निरूपक शास्त्रों के अभ्यास में ही लगा रहे। मेरा मन दोषों के चिंतन और वाणी दोषों के कथन से दूर रहे ।।२।।

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर।।

धरकर दिगंबर रूप कब, ग्रठ–बीस गुण पालन करूँ।
दो–बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूँ।।

तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध ग्राश्रव परिहरूँ ।
ग्ररु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपुकों निर्जरूँ ।।३।।

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ ।।

कर दूर रागादिक निरंतर, आत्मको निर्मल करूँ ।
बल ज्ञान दर्शन सुख ग्रतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ ।।

ग्रानन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ ।
ग्रावै 'ग्रमर' कब सुखद दिन, जब दुःखद भवसागर तरूँ ।।४।।

मेरे मन में यह भाव जग रहें हैं कि – वह दिन कब आयेगा जब मैं हृदय में समता भाव धारण करके, बारह भावनाओं का चिंतवन करके तथा ममतारूपी भूत (पिशाच) को भगाकर वन में जाकर मुनि दीक्षा धारण करूँगा। वह दिन कब आयेगा जब मैं दिगम्बर वेश धारण करके अट्ठाईस मूलगुण धारण करूँगा, बाईस परीषहों पर विजय प्राप्त करूँगा और दश धर्मों को धारण करूँगा, सुख देने वाले बारह प्रकार के तप तपूँगा और आश्रव और बंध भावों को त्याग नये कर्मों को रोककर संचित कर्मों की निर्जरा कर दूँगा ।।३।।

वह धन्य घड़ी कब होगी जब मैं अपने में ही रम जाऊँगा। कर्त्ता–कर्म के भेद का भी अभाव करता हुआ राग–द्वेष दूर करूँगा और आत्मा को पवित्र बना लूँगा – जिससे आत्मा में क्षायिक चारित्र प्रकट करके अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य से युक्त हो जाऊँगा । आनंदकन्द जिनेन्द्रपद प्राप्त कर लूँगा। मेरा वह दिन कब आयेगा जब इस दुःखरूपी भवसागर को पार कर अमर पद प्राप्त करूँगा।।४।।

उक्त स्तुति में देव–दर्शन से लेकर देव (भगवान्) बनने तक की भावना ही नहीं आई है किन्तु भक्त से भगवान् बनने की पूरी प्रक्रिया ही आ गई है।

प्रश्न -

१. उक्त स्तुति में कोई भी एक छंद जो तुम्हें रुचिकर हुआ हो, अर्थ सहित लिखिये एवं रुचिकर होने का कारण भी दीजिये।

पाठ दूसरा

पंच परमेष्ठी

णमो *अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

यह पंच नमस्कार मंत्र है। इसमें सबसे पहिले पूर्ण वीतरागी और पूर्ण ज्ञानी अरहंत भगवानों को और सिद्ध भगवानों को नमस्कार किया गया है। उसके बाद वीतराग मार्ग में चलने वाले मुनिराजों को नमस्कार किया गया है जिनमें आचार्य मुनिराज, उपाध्याय मुनिराज और सामान्य मुनिराज सब आ जाते हैं।

---

* 'धवल' में 'अरिहंताणं' व 'अरहंताणं' दोनों ही का प्रयोग हुआ है।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इनको पंच परमेष्ठी कहते हैं। अरहंतादिक परमपद हैं और जो परमपद में स्थित हों उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। पाँच प्रकार के होने से उन्हें पंच परमेष्ठी कहते हैं।

अरहंत

जो गृहस्थपना त्यागकर, मुनि धर्म अंगीकार कर, निज स्वभाव साधन द्वारा चार घाति कर्मों का क्षय करके अनंत चतुष्टय (अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंतवीर्य) रूप बिराजमान हुए वे अरहंत हैं।

अरहंत परमेष्ठी

शास्त्रों में अरहंत के ४६ गुणों (विशेषणों) का वर्णन है। उनमें कुछ विशेषण तो शरीर से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ आत्मा से। ४६ (छयालीस) गुणों में १० तो जन्म के अतिशय हैं, जो शरीर से संबंध रखते हैं। १० केवलज्ञान के अतिशय हैं, वे भी बाह्य पुण्य सामग्री से संबंधित हैं, तथा १४ देवकृत अतिशय तो स्पष्ट देवों द्वारा किए हुए हैं ही। ये सब तीर्थंकर अरहंतों के ही होते हैं, सब अरहंतो के नहीं। आठ प्रातिहार्य भी बाह्य विभूति हैं। किंतु अनंत चतुष्टय आत्मा से संबंध रखते है, अत: वे प्रत्येक अरहंत के होते हैं। अत: निश्चय से वे ही अरहंत के गुण हैं।

सिद्ध

सिद्ध परमेष्ठी

जो गृहस्थ अवस्था का त्यागकर, मुनिधर्म साधन द्वारा चार घाति कर्मों का नाश होने पर अनंत चतुष्टय प्रकट करके कुछ समय बाद अघाति कर्मों के नाश होने पर समस्त अन्य द्रव्यों का संबंध छूट जाने पर पूर्ण मुक्त हो गये हैं; लोक के अग्र–भाग में किंचित् न्यून पुरुषाकार बिराजमान हो गये हैं;

जिनके द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने से समस्त आत्मिक गुण प्रकट हो गये है; वे सिद्ध हैं। उनके आठ गुण कहे गये हैं–

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्ष्म वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के।।

१. क्षायिक सम्यक्त्व ३. अनंत ज्ञान ५. अवगाहनत्व ७. अनंतवीर्य
२. अनंत दर्शन ४. अगुरुलघुत्व ६. सूक्ष्मत्व ८. अव्याबाध

आचार्य, उपाध्याय और साधुओं का सामान्य स्वरूप

आचार्य, उपाध्याय और साधु सामान्य से साधुओं में ही आ जाते हैं। जो विरागी होकर, समस्त परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोग रूप मुनिधर्म अंगीकार करके अंतरंग में शुद्धोपयोग द्वारा अपने को आप रूप अनुभव करते हैं; अपने उपयोग को बहुत नहीं भ्रमाते हैं, जिनके कदाचित् मंदराग के उदय में शुभोपयोग भी होता है परन्तु उसे भी हेय मानते हैं, तीव्र कषाय का अभाव होने से अशुभोपयोग का तो अस्तित्व ही नहीं रहता है–ऐसे मुनिराज ही सच्चे साधु हैं।

आचार्य

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की अधिकता से प्रधान पद प्राप्त करके मुनिसंघ के नायक हुए हैं, तथा जो मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण में ही मग्न रहते हैं, पर कभी–कभी रागाँश के उदय से करुणाबुद्धि हो तो धर्म के लोभी अन्य जीवों को धर्मोपदेश देते हैं, दीक्षा लेने वाले को योग्य जान दीक्षा देते हैं,

आचार्य परमेष्ठी

अपने दोष प्रकट करने वाले को प्रायश्चित् विधि से शुद्ध करते हैं–ऐसा आचरण करने और कराने वाले आचार्य कहलाते हैं।

उपाध्याय

जो बहुत जैन शास्त्रों के ज्ञाता होकर संघ में पठन–पाठन के अधिकारी हुए हैं, तथा जो समस्त शास्त्रों का सार आत्मस्वरूप में एकाग्रता है; अधिकतर तो उसमें लीन रहते हैं, कभी कभी कषायाँश के उदय से यदि उपयोग वहाँ स्थिर न रहे तो उन शास्त्रो को

उपाध्याय परमेष्ठी

स्वयं पढ़ते हैं, औरों को पढ़ाते हैं – वे उपाध्याय हैं। ये मुख्यतः द्वादशाङ्ग के पाठी होते हैं।

साधु

आचार्य, उपाध्याय को छोड़कर अन्य समस्त जो मुनिधर्म के धारक हैं और आत्मस्वभाव को साधते हैं, बाह्य २८ मूलगुणों को अखंडित पालते हैं, समस्त आरंभ और अंतरंग बहिरंग परिग्रह से रहित होते हैं, सदा ज्ञान–ध्यान में लवलीन रहते हैं, सांसारिक प्रपंचों से सदा दूर रहते है, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं।

साधु परमेष्ठी

इस प्रकार पंच परमेष्ठी का स्वरूप वीतराग–विज्ञानमय है, अत: वे पूज्य हैं।

प्रश्न -

१. पंच परमेष्ठी किन्हें कहते हैं?

२. अरहंत और सिद्ध परमेष्ठीयों का स्वरूप बतलाइये एवं उनका अन्तर स्पष्ट कीजिए।

३. सामान्य से साधुओं का स्वरूप बताकर आचार्य साधुओं और उपाध्याय साधुओं का स्वरूप बतलाइये।

पाठ तीसरा

श्रावक के अष्ट मूलगुण

प्रबोध – क्यों भाई! इस शीशी में क्या है?

सुबोध – शहद ।

प्रबोध – क्यों?

सुबोध – वैद्यजी ने दवाई दी थी और कहा था कि शहद या चीनी (शक्कर) की चासनी में खाना। अतः बाजार से शहद लाया हूँ।

प्रबोध – तो क्या तुम शहद खाते हो?

मालूम नहीं? यह तो महान् अपवित्र पदार्थ हैं। मधु–मक्खियों का मल है और बहुत से त्रस–जीवों के घात से उत्पन्न होता है। इसे कदापि नहीं खाना चाहिये।

सुबोध – भाई, हम तो साधारण श्रावक हैं, कोई व्रती थोड़े ही हैं ।

प्रबोध – साधारण श्रावक भी अष्ट मूलगुण का धारी और सप्त व्यसन का त्यागी होता है। मधु (शहद) का त्याग अष्ट मूलगुणों में आता है।

सुबोध – मूलगुण किसे कहते हैं? और अष्ट मूलगुण में क्या–क्या आता है?

प्रबोध – निश्चय से तो समस्त पर–पदार्थों से दृष्टि हटाकर अपनी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता ही मुमुक्षु श्रावक के मूलगुण हैं; पर व्यवहार से मद्य–त्याग, मांस–त्याग, मधु–त्याग और पांच उदुम्बर फलों के त्याग को अष्ट मूलगुण कहते हैं।

सुबोध – मधु–त्याग तो शहद के त्याग को कहते हैं, पर मद्य–त्याग किसे कहते हैं?

प्रबोध – शराब वगैरह मादक वस्तुओं के सेवन करने का त्याग करना मद्य–त्याग है। यह पदार्थों को सड़ा–गलाकर बनाई जाती है, अतः इसके सेवन से लाखों जीवों का घात होता है तथा नशा उत्पन्न करने के कारण विवेक समाप्त होकर आदमी पागल–सा हो जाता है, अतः इसका त्याग करना भी अति आवश्यक है।

सुबोध– और मांस–त्याग क्यों आवश्यक है?

प्रबोध– त्रस जीवों के घात (हिंसा) बिना मांस की उत्पत्ति नहीं होती है तथा मांस में निरन्तर त्रस जीवों की उत्पत्ति भी होती रहती है। अत मांस खाने वाला असंख्य त्रस जीवों का घात करता है, उसके परिणाम क्रूर हो जाते हैं। आत्महित के इच्छुक प्राणी को मांस का सेवन कदापि नहीं करना चाहिये। अण्डा भी त्रस जीवों का शरीर होने से मांस ही हैं। अतः उसे भी नहीं खाना चाहिये।

सुबोध – और पंच उदुम्बर फल कौनसे हैं?

प्रबोध – बड़ का फल, पीपल का फल, ऊमर, कठूमर (गूलर) और पाकरफल इन पाँच जाति के फलों को उदुम्बर फल कहते है। इनके मध्य में अनेक सूक्ष्म स्थूल त्रस जीव पाये जाते हैं, अत: प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह इन्हें भी न खावे।

सुबोध – मैंने प्रवचन में सुना था कि आत्मज्ञान बिना तो इन सब का त्याग कार्यकारी नहीं है, अत: हमें पहिले तो आत्मज्ञान करना चाहिये न?

प्रबोध – भाई! आत्मज्ञान तो सच्चा मुक्ति का मार्ग है ही, पर यह बताओ क्या शराबी कबाबी को भी आत्मज्ञान हो सकता है? अत: आत्मज्ञान की अभिलाषा रखने वाले अष्ट मूलगुण धारण करते हैं।

प्रश्न -

१. मद्य–त्याग, मांस–त्याग और मधु–त्याग को स्पष्ट कीजिये।

२. पंच उदुम्बर फल कौन–कौन से हैं और उन्हें क्यों नहीं खाना चाहिये?

पाठ चौथा

इन्द्रियाँ

बेटी – माँ! पिताजी जैन साहब क्यों कहलाते हैं?

माँ – जैन हैं, इसलिए वे जैन कहलाते हैं। जिन का भक्त सो जैन या जिन–आज्ञा को माने सो जैन। जिनदेव के बताये मार्ग पर चलने वाला ही सच्चा जैन है।

बेटी – और जिन क्या होता है?

माँ – जिसने मोह–राग–द्वेष और इन्द्रियों को जीता वही जिन है।

बेटी – तो इन्द्रियाँ क्या हमारी शत्रु हैं जो उन्हे जीतना है? वे तो हमारे ज्ञान में सहायक हैं। जो शरीर के चिह्न आत्मा का ज्ञान कराने में सहायक हैं वे ही तो इन्द्रियाँ हैं।

माँ – हाँ, बेटी! संसारी जीव को इन्द्रियाँ ज्ञान के काल में भी निमित्त होती हैं, पर एक बात यह भी तो है कि ये विषय–भोगों में उलझाने में भी तो निमित्त हैं। अतः इन्हें जीतने वाला ही भगवान बन पाता है।

बेटी – तो इन्द्रियों के भोगों को छोड़ना चाहिए, इन्द्रिय ज्ञान को तो नहीं ?

माँ – तुम जानती हो कि इन्द्रियाँ कितनी हैं और किस ज्ञान में निमित्त हैं?

बेटी – हाँ, वे पाँच होती हैं । स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण।

माँ – अच्छा बोलो स्पर्शन इन्द्रिय किसे कहते हैं?

बेटी – जिससे छू जाने पर हल्का–भारी, रूखा–चिकना, कड़ा–नरम और ठंडा–गरम का ज्ञान होता है, उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं।

माँ – जानता तो आत्मा ही है न?

बेटी – हाँ! हाँ !! इन्द्रियाँ तो निमित्त मात्र हैं।
इसी प्रकार जिससे खट्टा, मीठा, कड़वा, कषायला और चरपरा स्वाद जाना जाता है, वही रसना इन्द्रिय है। जीभ को ही रसना कहते हैं।

माँ – और स्पर्शन क्या है?

बेटी – स्पर्शन तो सारा शरीर ही हैं। हाँ ! और जिससे हम सूंघते हैं, वही नाक तो घ्राण इन्द्रिय कहलाती है, यह सुगन्ध और दुर्गन्ध के ज्ञान में निमित्त होती है।

माँ – और रंग के ज्ञान में निमित्त कौन है?

बेटी – आँख। इसी को चक्षु कहते हैं। जिससे काला, नीला, पीला, लाल और सफेद आदि रंगों का ज्ञान हो, वही तो चक्षु इन्द्रिय है और जिनसे हम सुनते हैं, वे ही कान हैं; जिन्हें कर्ण या श्रोत्र इन्द्रिय कहा जाता है।

माँ – तू तो सब जानती है, पर यह बता कि ये पाँचों ही इन्द्रियाँ किस वस्तु के जानने में निमित्त हुई?

बेटी – स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और आवाज व शब्दों के जानने में ही निमित्त हुईं।

माँ – स्पर्श, रस, गंध और वर्ण तो पुद्गल के गुण है, अतः इनके निमित्त से तो सिर्फ पुद्गल का ही ज्ञान हुआ, आत्मा का ज्ञान तो हुआ नहीं।

बेटी – आवाज़ व शब्दों का ज्ञान भी तो हुआ?

माँ – वह भी तो पुद्गल की ही पर्याय है? आत्मा तो अमूर्तिक चेतन पदार्थ है – उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और आवाज़ शब्द हैं ही नहीं। अतः इन्द्रियाँ उसके जानने में निमित्त नहीं हो सकतीं।

बेटी – न हो तो न सही। जिसके जानने में निमित्त हैं, वही ठीक।

माँ – कैसे? आत्मा का हित तो आत्मा के जानने में है, अतः इन्द्रिय ज्ञान भी तुच्छ हुआ। जिस प्रकार इन्द्रिय सुख (भोग) हेय है, उसी प्रकार मात्र पर को जानने वाला इन्द्रिय ज्ञान भी तुच्छ है, तथा अतीन्द्रिय आनन्द एवं अतीन्द्रिय ज्ञान ही उपादेय है।

प्रश्न -

१. जैन किसे कहते हैं?

२. इन्द्रियाँ किसे कहते हैं? वे कितनी हैं? नाम सहित बताइये।

३. इन्द्रियाँ किस को जानने में निमित्त हैं?

४. क्या इन्द्रियाँ मात्र ज्ञान में हीं निमित्त हैं?

५. यदि इन्द्रियाँ ज्ञान में मात्र निमित्त हैं तो जानता कौन हैं?

६. इन्द्रिय ज्ञान तुच्छ क्यों है?

पाठ में आये हुए सूत्रात्मक सिद्धान्त-वाक्य

१. जिसने मोह–राग–द्वेष और इन्द्रियों को जीता सो जिन है।

२. जिन का भक्त या जिन आज्ञा को माने सो जैन है।

३. संसारी आत्मा को ज्ञान में निमित्त शरीर के चिह्न विशेष ही इन्द्रियाँ हैं।

४. जिससे छू जाने पर हल्का–भारी, रूखा–चिकना, ठंडा–गरम और कड़ा–नरम का ज्ञान हो, वही स्पर्शन इन्द्रिय है।

५. जो खट्टा, मीठा, खारा, चरपरा आदि स्वाद जानने में निमित्त हो, वह जीभ ही रसना इन्द्रिय कहलाती है।

६. सुगन्ध और दुर्गन्ध जानने में निमित्त रूप नाक ही घ्राण इन्द्रिय है।

७. रंगों के ज्ञान में निमित्त रूप आँख ही चक्षु इन्द्रिय है।

८. जो आवाज के ज्ञान में निमित्त हो, वही कर्ण इन्द्रिय है।

९. ये इन्द्रियाँ मात्र पुद्गल के ज्ञान में ही निमित्त हैं, आत्म–ज्ञान में नहीं।

१०. इन्द्रिय सुख की भांति इन्द्रिय ज्ञान भी तुच्छ है। अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय ज्ञान ही उपादेय हैं।

पाठ पाँचवाँ : सदाचार

(भक्ष्याभक्ष्य विचार)

सुबोध – क्यों भाई प्रबोध! कहाँ जा रहे हो? चलो, आज तो चौराहे पर आलू की चाट खायेंगे। बहुत दिनों से नहीं खाई हैं।

प्रबोध – चौराहे पर और आलू की चाट! हमें कोई भी चीज़ बाज़ार में नहीं खाना चाहिये और आलू की चाट भी कोइ खाने की चीज़ है? याद नहीं, कल गुरुजी ने कहा था कि आलू तो अभक्ष्य है?

सुबोध – यह अभक्ष्य क्या होता है, मेरी तो समझ में नहीं आता। पाठशाला में पण्डितजी कहते हैं–यह नहीं खाना चाहिये, वह नहीं खाना चाहिए। औषधालय में वैदजी कहते हैं– यह नहीं खाना, वह नहीं खाना। अपने को तो कुछ पसंद नहीं। जो मन में आए सो खाओ और मौज से रहो।

प्रबोध – जो खाने योग्य सो भक्ष्य और जो खाने योग्य नहीं सो अभक्ष्य। यही तो कहते हैं कि अपनी आत्मा इतनी पवित्र बनाओ कि उसमें अभक्ष्य

के खाने का भाव (इच्छा) आवे ही नहीं। यदि पण्डितजी कहते हैं कि अभक्ष्य का भक्षण मत करो तो तुम्हारे हित की ही कहते हैं क्योंकि अभक्ष्य खाने से और खाने के भाव से आत्मा का पतन होता है।

सुबोध – तो कौन–कौन से पदार्थ अभक्ष्य हैं?

प्रबोध – जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता हो या बहुत से स्थावर जीवों का घात होता हो तथा जो पदार्थ भले पुरूषों के सेवन करने योग्य न हों या नशाकारक अथवा अस्वास्थ्यकर हों, वे सब अभक्ष्य हैं। इन अभक्ष्यों को पांच भागों में बांटा जाता है।

सुबोध – कौन–कौन से?

प्रबोध – १. त्रसघात ३. अनुपसेव्य ५. अनिष्ट
२. बहुघात ४. नशाकारक

जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता हो उन्हें त्रसघात कहते हैं, जैसे पंच उदुम्बर फल। इनके मध्य में अनेक सूक्ष्म स्थूल त्रस जीव पाये जाते हैं, इन्हें कभी नहीं खाना चाहिए।

जिन पदार्थों के खाने से बहुत (अनंत) स्थावर जीवों का घात होता हो उन्हें बहुघात कहते हैं। समस्त कंदमूल जैसे आलू, गाजर, मूली, शकरकंदी, लहसन, प्याज आदि पदार्थों में अनंत स्थावर निगोदिया जीव रहते हैं। इनके खाने से अनंत जीवों का घात होता है, अतः इन्हें भी नहीं खाना चाहिये।

सुबोध – और अनुपसेव्य ?

प्रबोध – जिनका सेवन उत्तम पुरूष बुरा समझें, वे लोकनिंद्य पदार्थ ही अनुपसेव्य हैं, जैसे लार, मल–मूत्र आदि पदार्थ।

अनुपसेव्य पदार्थों का सेवन लोकनिंद्य होने से तीव्र राग के बिना नहीं हो सकता है, अतः वह भी अभक्ष्य है।

सुबोध – और नशाकारक ?

प्रबोध – जो वस्तुएं नशा बढ़ाने वाली हों, उन्हें नशाकारक अभक्ष्य कहते हैं। शराब, अफीम, भंग, गाँजा, तम्बाकू आदि। अतः इनका भी सेवन नहीं करना चाहिये।

तथा जो वस्तु अनिष्ट (हानिकारक) हो, वह भी अभक्ष्य है क्योंकि नुकसान करने वाली चीज़ को जानते हुए भी खाने का भाव अति तीव्र राग भाव हुये बिना नहीं होता, अतः वह त्याग करने योग्य है।

प्रबोध – अच्छा, आज से मैं भी किसी भी अभक्ष्य पदार्थ को उपयोग में नहीं लूंगा (भक्षण नहीं करूंगा)। मैं तुम्हारा उपकार मानता हूँ, जो तुमने मुझे अभक्ष्य भक्षण के महापाप से बचा लिया।

प्रश्न -

१. अभक्ष्य किसे कहते है ? वे कितने प्रकार के होते हैं ?

२. अनुपसेव्य से क्या समझते हो ? उसके सेवन से हिंसा कैसे होती है ?

३. किन्हीं चार बहुघात के नाम गिनाइये।

४. नशाकारक अभक्ष्य से क्या समझते हो ?

पाठ छठवाँ

द्रव्य गुण पर्याय

छात्र – गुरूजी, आज अख़बार में देखा था कि अब ऐसे अणुबम बन गये हैं कि यदि लड़ाई छिड़ गई तो विश्व का नाश हो जायगा।

अध्यापक – क्या विश्व का भी कभी नाश हो सकता है? विश्व तो छह द्रव्यों के समुदाय को कहते हैं और द्रव्यों का कभी नाश नहीं होता है, मात्र पर्याय पलटती हैं।

छात्र – विश्व तो द्रव्यों के समूह को कहते हैं और द्रव्य?

अध्यापक – गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

छात्र – मन्दिरजी में सूत्रजी के प्रवचन में तो सुना था कि द्रव्य, गुण और पर्यायवान होता है **(गुण पर्ययवद् द्रव्यम्)**।

अध्यापक – ठीक तो है, गुणों में होने वाले प्रति समय के परिवर्तन को ही तो पर्याय कहते है। अतः द्रव्य को गुणों का समुदाय कहने में पर्यायें आ ही जाती हैं।

छात्र – गुणों के परिणमन को पर्याय कहते हैं, यह तो समझा, पर गुण किसे कहते हैं?

अध्यापक – जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों (प्रदेशों) में और उसकी सम्पूर्ण अवस्थाओं (पर्यायों) में रहता है, उसको गुण कहते हैं। जैसे ज्ञान आत्मा का गुण है, वह

ग्रात्मा के समस्त प्रदेशों में तथा निगोद से लेकर मोक्ष तक की समस्त हालतों में पाया जाता है। ग्रतः आत्मा को ज्ञानमय कहा जाता है।

छात्र – ग्रात्मा में ऐसे कितने गुण हैं?

ग्रध्यापक – ग्रात्मा में ज्ञान जैसे ग्रनंत गुण हैं, आत्मा में ही क्या समस्त द्रव्यो में, प्रत्येक में, ग्रपने–ग्रपने ग्रलग–ग्रलग ग्रनंत–ग्रनंत गुण हैं।

छात्र – तो हमारी ग्रात्मा ग्रनंत गुणों का भंडार हैं?

ग्रध्यापक – भंडार क्या? ऐसा थोड़े ही है कि ग्रात्मा ग्रलग हो ग्रौर गुण उसमे भरे हो, जो उसे गुणों का भंडार कहें, वह तो गुणमय ही है, वह तो गुणो का ग्रखण्ड पिण्ड है।

छात्र – वे ग्रनंत गुण कौन–कौन से हैं?

ग्रध्यापक – क्या बात करते हो, क्या ग्रनंत भी गिनाये या बताए जा सकते हैं?

छात्र – कुछ तो बताइये?

ग्रध्यापक – गुण दो प्रकार के होते हैं, सामान्य ग्रौर विशेष।

जो गुण सब द्रव्यों में रहते हैं, उनको सामान्य गुण कहते हैं ग्रौर जो सब द्रव्यों में न रहकर ग्रपने–ग्रपने द्रव्य में हों, उन्हें विशेष गुण कहते है। जैसे अस्तित्व गुण सब द्रव्यों में पाया जाता है, अतः वह सामान्य गुण हुग्रा ग्रौर ज्ञान गुण सिर्फ ग्रात्मा में ही पाया जाता हैं, ग्रतः जीव द्रव्य का विशेष गुण हुग्रा।

छात्र – सामान्य गुण कितने होते हैं?

ग्रध्यापक – ग्रनेक, पर उनमें छः मुख्य हैं – ग्रस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, ग्रगुरुलघुत्व ग्रौर प्रदेशत्व।

जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कभी भी ग्रभाव (नाश)

न हो उसे अस्तित्व गुण कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य में अस्तित्व गुण हैं, अतः प्रत्येक द्रव्य की सत्ता स्वयं से है, उसे किसी ने बनाया नहीं है और न उसे कोई मिटा ही सकता है क्योंकि वह अनादि अनंत है।

इसी अस्तित्व गुण की अपेक्षा तो द्रव्य का लक्षण "सत्" किया जाता है, **"सत् द्रव्यलक्षणम्"** और सत् का कभी विनाश नहीं होता, तथा असत् का कभी उत्पाद् नहीं होता। मात्र पर्याय पलटती हैं।

छात्र – और वस्तुत्व...?

अध्यापक – जिस शक्ति के कारण द्रव्य में अर्थ क्रिया (प्रयोजनभूत क्रिया) हो उसे वस्तुत्व गुण कहते हैं। वस्तुत्व गुण की मुख्यता से ही द्रव्य को वस्तु कहते हैं।

कोई भी वस्तु लोक में पर के प्रयोजन की नहीं हैं, पर प्रत्येक वस्तु अपने–अपने प्रयोजन से युक्त हैं, क्योंकि उसमें वस्तुत्व गुण है।

छात्र – द्रव्यत्व गुण किसे कहते हैं?

अध्यापक – जिस शक्ति के कारण द्रव्य की अवस्था निरन्तर बदलती रहे उसे द्रव्यत्व गुण कहते हैं। द्रव्यत्व गुण की मुख्यता से वस्तु को द्रव्य कहते है। एक द्रव्य में परिवर्तन का कारण कोई दुसरा द्रव्य नहीं है क्योंकि उसमें द्रव्यत्व गुण है, अतः उसे परिणमन करने में पर की अपेक्षा नहीं है।

छात्र – उन तीनों गुणों में अन्तर क्या हुआ?

अध्यापक – अस्तित्व गुण तो मात्र "है" यह बतलाता है, वस्तुत्व गुण "निरर्थक नहीं है" यह बताता है और द्रव्यत्व गुण "निरंतर परिणमनशील है" यह बताता है।

छात्र – प्रमेयत्व गुण किसे कहते हैं?

अध्यापक – जिस शक्ति के कारण द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय हो उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

छात्र – बहुत सी वस्तुएँ बहुत सूक्ष्म होती हैं, अतः वे समझ में नही आ सकतीं क्योंकि वे दिखाई ही नहीं देती हैं। जैसे हमारी आत्मा ही है, उसे कैसे जानें, वह तो दिखाई देती ही नहीं है?

अध्यापक – भाई! प्रत्येक द्रव्य में ऐसी शक्ति है कि वह अवश्य ही जाना जा सकता है, यह बात अलग है कि वह इन्द्रियज्ञान द्वारा पकड़ में न आवे। यह तो हमारे ज्ञान की कमी के कारण है। जिनका ज्ञान पूरा विकसित हुआ है उनके ज्ञान (केवलज्ञान) में सब कुछ आ जाता है और अन्य ज्ञानों में अपनी–अपनी योग्यतानुसार आता है। अतः जगत् का कोई भी पदार्थ अज्ञात रहे ऐसा नहीं बन सकता है।

छात्र – अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं?

अध्यापक – जिस शक्ति के कारण द्रव्य में द्रव्यपन कायम रहता है, अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं हो जाता, एक गुण दूसरे गुण रूप नहीं होता और द्रव्य में रहने वाले अनंत गुण बिखर कर अलग–अलग नही हो जाते, उसे अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं।

छात्र – और प्रदेशत्व .....?

अध्यापक – जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य रहता है उसको प्रदेशत्व गुण कहते हैं।

छात्र – सामान्य गुण तो समझ गया पर विशेष गुण और समझाइये।

अध्यापक – बताया था न, कि जो सब द्रव्यों में न रहकर अपने–अपने द्रव्यों में ही रहते हैं वे विशेष गुण हैं। जैसे जीव के ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख आदि। पुद्गल में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि।

छात्र – द्रव्य, गुण, पर्याय के जानने से लाभ क्या है?

अध्यापक – हम तुम भी तो जीव द्रव्य हैं, और द्रव्य गुणों का पिण्ड होता है, अतः हम भी गुणों के पिण्ड हैं। ऐसा ज्ञान होने पर "हम दीन गुणहीन हैं"– ऐसी भावना निकल जाती हैं; तथा मेरे में अस्तित्व गुण है अतः मेरा कोई नाश नहीं कर सकता है, ऐसा ज्ञान होने पर अनंत निर्भयता आ जाती है।

ज्ञान हमारा गुण है, उसका कभी नाश नहीं होता। अज्ञान और राग–द्वेष आदि स्वभाव से विपरीत भाव (विकारी पर्याय) हैं, इसलिए आत्मा के आश्रय से उनका अभाव हो जाता है।

प्रश्न -

१. द्रव्य किसे कहते हैं?

२. गुण किसे कहते हैं? वे कितने प्रकार के होते हैं?

३. सामान्य गुण किसे कहते हैं? वे कितने हैं? प्रत्येक की परिभाषा लिखिए।

४. विशेष गुण किसे कहते हैं? जीव और पुद्गल के विशेष गुण बताइए।

५. पर्याय किसे कहते हैं?

६. द्रव्य, गुण, पर्याय समझने से क्या लाभ है?

पाठ सातवाँ

भगवान नेमिनाथ

बहिन – भाई साहब! सुना है भगवान नेमिनाथ अपनी पत्नी राजुल को बिलखती छोड़कर चले गये थे।

भाई – भगवान नेमिनाथ तो बालब्रह्मचारी थे। उनकी तो शादी ही नहीं हुई थी। अत: पत्नी को छोड़कर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

बहिन – फिर लोग ऐसा क्यों कहते हैं?

भाई – बात यह है कि नेमिकुमार जब राजकुमार थे तब उनकी सगाई जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की पुत्री राजुल (राजमति) से हो गई थी। पर जब नेमिकुमार की बरात जा रही थी तब मरणासन्न निरीह मूक पशुओं को देख, संसार का स्वार्थपन और क्रुरपन लक्ष्य में आते ही, उनको संसार और भोगों से वैराग्य हो गया था। वे आत्मज्ञानी तो थे ही, अत: उसी समय समस्त बाह्य परिग्रह माता–पिता, धन–धान्य, राज्य आदि तथा अंतरंग परिग्रह राग–द्वेष का त्यागकर नग्न दिगम्बर साधु हो गये थे। बरात छोड़ गिरनार की तरफ चले गये थे।

इसी कारण लोग कहते हैं कि वे पत्नी राजुल को छोड़ गये।

बहिन – जब नेमिनाथ चले गये फिर...राजुल की शादी,.... ?

भाई – नहीं बहिन! राजुल भी तत्त्वप्रेमी राजकुमारी थी। उक्त घटना का निमित्त पाकर राजुल की आत्मा भी वैरागी हो गई। उनके पिताजी ने उन्हें बहुत समझाया पर वे फिर शादी करने को राजी नहीं हुईं।

बहिन – यह तो बहुत बुरा हुआ।

भाई – बुरा क्या हुआ! राग से विराग की ओर जाना क्या बुरा है ?

बहिन – तो क्या फिर वे जीवन भर पिता के घर ही रहीं ?

भाई – नहीं बहिन! बेटी जीवन भर पिता के घर नहीं रहती। उन्हें तो वैराग्य हो गया था न ? उन्होंने भोगों की असारता का अनुभव किया तथा ज्ञानानन्द स्वभावी राग–द्वेष के विकार से रहित आत्मा का अनुभव किया और आर्जिका का व्रत लेकर आत्मसाधना में लीन हो गईं।

बहिन – ये नेमिनाथ कौन थे ?

भाई – सौरीपुर के राजा समुद्रविजय के राजकुमार थे, श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। इनकी माता का नाम शिवादेवी था। ये बाईसवें तीर्थंकर थे। अन्य तीर्थंकरों के समान इनका भी जन्म–कल्याणक बड़े ही उत्साह के साथ मनाया गया था।

आत्मबल के साथ–साथ उनका शारीरिक बल भी अतुल्य था।

उन्होंने राजकाज और विषयभोग को अपना कार्यक्षेत्र न बनाकर गिरनार की गुफाओं में शान्ति से आत्म–साधना करना ही अपना ध्येय बनाया। उन्होंने समस्त जगत् से अपने उपयोग को हटाकर एकमात्र

ज्ञानानन्द स्वभावी अपनी आत्मा में लगाया। आत्मज्ञानी तो वे पहिले से थे ही, आत्म–स्थिरता रूप चारित्र की श्रेणियों में बढते हुए दीक्षा के ५६ दिन बाद आत्म–साधना की चरम परिणति क्षपक श्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान (पूर्ण ज्ञान) प्राप्त किया। तदन्तर करीब सात सौ वर्ष तक लगातार समवशरण सहित सारे भारतवर्ष में उनका विहार होता रहा तथा उनकी दिव्य ध्वनि द्वारा तत्त्व–प्रचार होता रहा।

अन्त में गिरनार पर्वत से ही एक हजार वर्ष की आयु पूरी कर मुक्ति प्राप्त की।

बहिन – तो गिरनारजी "सिद्धक्षेत्र" इसीलिए कहलाता होगा?

भाई – हाँ, गिरनार पर्वत नेमिनाथ की निर्वाण–भूमि ही नहीं, तपो–भूमि भी है। राजुल ने भी वहीं तपस्या की थी तथा श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कुमार और शम्बु कुमार भी वहीं से मोक्ष गये थे।

जैन समाज में शिखरजी के पश्चात् गिरनार सिद्धक्षेत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न -

१. भगवान नेमिनाथ का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

२. भगवान नेमिनाथ की तपो–भूमि और निर्वाण–भूमि का परिचय दीजिये।

पाठ आठवाँ जिनवाणी-स्तुति

वीर हिमाचलतैं निकसी, गुरु गौतम के मुख कुंड ढरी है ।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर करी है ।।
ज्ञान पयोनिधि माँहि रली, बहु भंग तरंगनिसों उछरी है ।
ता शुचि शारद गंग नदी प्रति, मैं अंजुलि कर शीश धरी है ।।१।।
या जगमंदिर में अनिवार, अज्ञान अंधेर छयो अति भारी ।
श्री जिन की धुनि दीपशिखा सम, जो नहिं होत प्रकाशन–हारी।।
तो किस भांति पदारथ पाँति, कहाँ लहते रहते–अविचारी ।
या विधि संत कहे धनि है, धनि हैं जिन वैन बड़े उपकारी ।।२।।

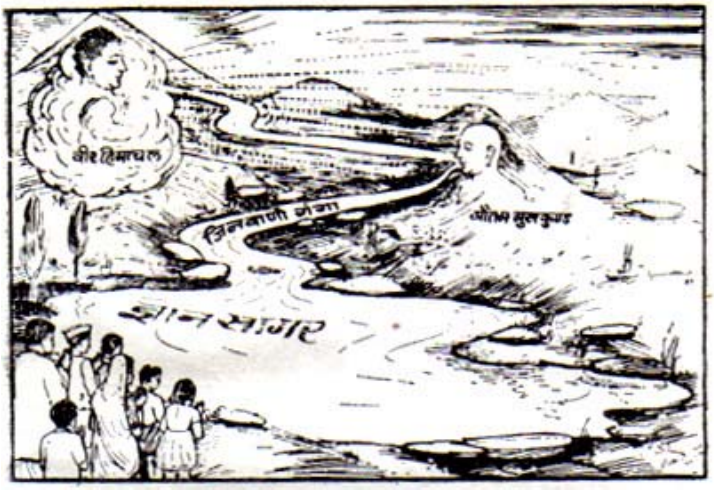

यह जिनवाणी की स्तुति है। इसमें दीपशिखा के समान अज्ञानांधकार को नाश करने वाली पवित्र जिनवाणी–रूपी गंगा को नमस्कार किया गया है।

जिनवाणी अर्थात् जिनेन्द्र भगवान द्वारा दिया गया तत्त्वोपदेश, उनके द्वारा बताया गया मुक्ति का मार्ग।

हे जिनवाणी–रूपी पवित्र गंगा! तुम महावीर भगवानरूपी हिमालय पर्वत से प्रवाहित होकर गौतम गणधर के मुखरूपी कुण्ड में आई हो। तुम मोहरूपी महान् पर्वतों को भेदती हुई जगत् के अज्ञान और ताप (दु:खों) को दूर कर रही हो। सप्तभंगी रूप नयों की तरंगों से उल्लसित होती हुई ज्ञानरूपी समुद्र में मिल गई हो।

ऐसी पवित्र जिनवाणी–रूपी गंगा को मैं अपनी बुद्धि और शक्ति अनुसार अञ्जलि में धारण करके शीश पर धारण करता हूँ।।१।।

इस संसाररूपी मंदिर में अज्ञानरूपी घोर अंधकार छाया हुआ है। यदि उस अज्ञानांधकार को नष्ट करने के लिए जिनवाणी रूप दीपशिखा नहीं होती तो फिर तत्त्वों का वास्तविक स्वरूप किस प्रकार जाना जाता? वस्तु स्वरूप अविचारित ही रह जाता। अत: संत कवि कहते हैं कि जिनवाणी बड़ी ही उपकार करने वाली है, जिसकी कृपा से हम तत्त्व का सही स्वरूप समझ सके ।।२।।

मैं उस जिनवाणी को बारंबार नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न -

१. जिनवाणी स्तुति की कोई चार पंक्तियाँ अर्थ सहित लिखिये।

महावीर-वन्दना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरण–तारण, भव–निवारण, भव–जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं ।।

जो राग–द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में।।
युगपद् विशद सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में।।

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार हैं।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावैं पार है।।
बस वीतराग–विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वंदना शत बार है।।

जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है।।
जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोई हैं, अणु–अणु स्वयं में लीन है।।

आतम बने परमातमा, हो शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में ।।

- डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल